

विजेन्द्र की कविता और लोकधर्म

Vijendra Prasad Meena

Assistant Professor, Department of Hindi, SPNKS Government PG College, Dausa, Rajasthan, India

सार

८३ वर्षीय विजेन्द्र के दस से अधिक कविता संग्रह (23 कविता संग्रह और १४ भागों में रचनावली भी) और लगभग इतने ही आलोचनात्मक-डायरी आदि प्रकाशित हैं। वह चित्रकार भी हैं। उनके साथ 'लोकधर्म' कवि कुछ इस तरह जुड़ा है कि दोनों एक दूसरे के पर्याय लगते हैं। उन्हें लोकधर्म कविता की अवधारणा का प्रस्तोता समझा जाता है। विजेन्द्र जी हमारे समय के ऐसे महत्वपूर्ण कवि हैं जिन्होंने प्रचुर मात्रा में गद्य लेखन के साथ-साथ अद्भुत पेंटिंग्स भी बनाये हैं। लगभग अस्सी के वय पार कर चुके कविवर विजेन्द्र के लगभग चार दशकों से उपर के दीर्घ कालखंड में समाये कविकर्म और सौंदर्यदृष्टि को देखकर यह सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है कि हिन्दी-काव्याकाश में निराला और त्रिलोचन की परंपरा के एक अत्यंत दृष्टिसंपन्न कवि के रूप में उनका अभ्युदय हुआ है जो आज अन्यत्र विरल है, और जिसकी दीप्ति एक लंबे अरसे तक कवियों और उनके पाठकों को आलोकमान करेगी।

उनकी कविताओं के पीछे उनकी काव्यमीमांसा का अपना ठोस सैद्धांतिक पक्ष है जिसकी जड़े इस देश की लोक-परम्परा में हैं। यहाँ विचारणीय बात यह है कि उनके चिंतन में विचार एक कवि के निकष पर कस कर आते हैं जो हमारे कवियों, खासकर युवा कवियों का सही और सटीक मार्गदर्शन करता है। विजेन्द्र जी का सौंदर्यचिंतन मूलतः मार्क्सवादी सौंदर्यचिंतन ही है, पर भारतीय भावभूमि पर एकदम निरखा-परखा हुआ। वे अपने सौंदर्यचिंतन के समर्थन में जो कुछ भी कहते हैं, उसे साथ-साथ अपनी परम्परा और जातीय साहित्यनिष्ठा से प्रमाणित भी करते चलते हैं। इसलिये उनकी सोच बहुत साफ़ और बोधगम्य रही है। वे अंग्रेजी भाषा साहित्य के विद्वान भी हैं और उन्हें पाश्चात्य सौंदर्य-शिल्प का सघन ज्ञान है। पर यहाँ वे उन्हीं विचारों का आश्रय लेते हैं या समर्थन करते हैं जिनका अपना भारतीय मूल्य जीवित रह सकता है। इसलिये कहा जा सकता है कि विजेन्द्र एक संस्कारवान सर्जक-चिंतक हैं जिनके यहाँ सौंदर्य-चिंता में विचार और उनकी कविता का स्वभाव सदैव एकमेक रहा है और जो किसी तृष्णा या लोभ में फँस कर अपने आसन से कभी च्युत नहीं हुए। उनके चिंतन में जो गहन पार्थिवता है उसका संकेत इस बात से भी मिलता है कि उनका शब्दकर्म शुरु से ही जन का पक्षधर रहा है न कि अभिजन का। वे लोक और जन के प्रतिबद्ध रचनाकार रहे हैं। उनकी सौंदर्यदृष्टि में मार्क्सवादी सौंदर्यचिंतन लोक के सौंदर्यबोध के साथ इतना घुल-मिल कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत होता है कि ऐसा विरल संयोग विजेन्द्र और उन जैसे कुछ ही कवियों के यहाँ ही विपुलता से गोचर होता है, जबकि बुर्जुआ सौंदर्यशास्त्री भाषा की बात भाषा से शुरु करके भाषा पर ही समाप्त कर देना चाहते हैं यानि जीवन, प्रकृति, समाज से वंचित करके विचार को यथास्थिति की हद तक ही रखना चाहते हैं जिससे उनका विरोध है। वे सौंदर्यशास्त्र में गहनता से जीवन, प्रकृति और समाज का संस्पर्श करते हैं। और सिर्फ संस्पर्श ही नहीं करते, उसके भीतर आत्मीय सहजता और निस्पृहता से प्रवेशकर सौंदर्य का खनिज भी ढूँढते हैं। साथ ही एक चित्रकार होने के कारण उनकी चित्रात्मक सोच-शैली का प्रभाव भी उनके पूरे साहित्य पर पड़ा है। उनके चित्रों की तुलना उनकी कविता से करने से यह सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है कि कि उनके सारे चित्र भी एक तरह से अनबोलती कविताएँ ही हैं जिसमें लिपिहीन सौंदर्य का झलक मिलता है, जहाँ कहे कि इसकी

सौंदर्यशास्त्रीयता में उनकी कविता के सौंदर्य का ही प्रतिरूप भासित होता है। अतएव उनके सौंदर्यशास्त्र की अवधारणा का दायरा वृहत्तर और गहरा है जो उनकी सतत अध्ययनशीलता, निरंतर विकसित होती लोकपरक सौंदर्यदृष्टि और विचारप्रक्रिया की क्रमिक सुदृढता का परिणाम है।

'त्रास' (1966) से अपनी काव्ययात्रा आरंभ करने वाले इस मनीषी कवि की अब तक कुल तेरह कविता-पुस्तकें आ चुकी हैं। और गद्यकृति 'कविता और मेरा समय (2000) के बाद अब उनकी नई कृति 'सौंदर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता' आयी है जो न सिर्फ कविता को गहराई से समझने का मर्म बतलाती है, बल्कि कवि-मन में आधुनिक भावबोध की लोकचेतना का संस्कार उत्पन्न करने का उपक्रम भी करती है जो मानसपटल पर देर तक टिक कर हमें रचना से जीवन तक सर्वत्र, उत्कृष्टता और उसमें जो कुछ 'सु' है उसकी ओर मोड़ता है जिसमें लोक-जीवन के सत्य-शिव-सुन्दर का प्रभूत माधुर्य भासित होता है। यहाँ पाश्चात्य जीवन शैली से उद्भूत बुर्जुआ सौंदर्य-दृष्टि नहीं, वरन एक भारतीय मन की आँख से देखा-परखा गया विरासत में मिला वह लोकसौंदर्य है जहाँ भारत की आत्मा शुरु से विराजती रही है पर उसको देखने-गुनने वालों को पिछड़ा और दकियानूस कह कर दुत्कारा गया है।

एक ऐसे जनविरोधी समय में जबकि, कुंठा-संत्रास-तनाव के वातावरण में मध्यमवर्गीय विचार से सृजित सौंदर्यशास्त्र के निकषों पर रची जा रही कविताएं दृश्य में देर तक नहीं ठहर पा रहीं और बाजारवाद की आँधी में बिखर जा रही हैं, विजेन्द्र की सौंदर्यदृष्टि और उनकी कविताओं की अलग पहचान होनी स्वाभाविक ही है जो हमें तन्मयता से काव्यसौंदर्य के उन नये प्रतिमानों से जुड़े सवाल की ओर ले चलते हैं जिसका अर्थपूर्ण अवगाहन उनकी पुस्तक 'सौंदर्यशास्त्र : भारतीय चित्त और कविता' में हुआ है जहाँ लोकजीवन के स्पंदन और आवेग को गहराई से महसूसने की बिलकुल चैतन्य नवदृष्टि प्राप्त होती है, हालाँकि लेखक ने बड़े विनयभाव से पुस्तक के आमुख में ही स्पष्ट कर दिया है कि 'ये बातें न तो पूर्ण हैं, न निष्कर्षमूलक। यह सब एक तरह से स्वयं से संवाद है। कुछ जानने का प्रयास। कुछ खोजने की ललक। कुछ को फिर से जानने-समझने की कोशिश।' पर यह लेखक का प्रांजल अहोभाव ही है। यानि कि यह कृति एक तरह से एक कवि का स्वयं से संवाद है जिसे कवि विजेन्द्र के स्वयं के द्वारा सृजनप्रक्रिया में आत्मगत हुए अनुभवों से कविता के स्वभाव को परखने की एक सार्थक पहल भी कही जा सकती है।

परिचय

सौंदर्यशास्त्र की इस आलोच्यकृति में उनके कुल उन्नीस लेख दृष्टिगत हैं जो आद्योपांत लगभग दो सौ पृष्ठों में कविता के सौंदर्यशास्त्र से जुड़े विविध विषय-पक्षों को क्रमवार उद्घाटित करते चलते हैं। पहला आलेख जिसके शीर्षक से पुस्तक का नामकरण भी हुआ है, भारतीय चित्त की प्रकृति की मौलिक सूझ-समझ प्रस्तुत करता है। वस्तुतः इस आलेख की मौलिक संकल्पना की टेक पर ही पुस्तक में अन्य सारे विचार प्रस्तुत हुए हैं। इस आलेख में भारतीय चित्त की विशेषताओं का निरूपण जिस व्यापकता और गहराई से किया गया है कि उसके मूल में

काव्यलोक की अपनी लंबी परम्परा से प्रसंगवश जुड़ने की प्रक्रिया की खोजबीन ही लक्षित होती है जहाँ क्रियाशील भारतीय जीवन की गतिकी हर किसी को मूर्तमान और अनुभवनीय रूप में दिखाई पड़ेगी।[1]

यहाँ बात आदिकवि बाल्मिकि और आचार्य भरत से लेकर कालिदास, भवभूति, फिर मध्यकालीन संत कवियों से लेकर निराला, मुक्तिबोध और समानधर्मा कई आधुनिक कवियों तक हुई है जिसमें यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थापना की गयी है कि संपूर्ण भारतीय वाङ्मय ही सदा लोक का पक्षधर रहा है जिसके समूचे साहित्य का आधार ही लोकधर्म है क्योंकि बकौल विजेंद्र जी के "जिस लोक की बात भरत ने की है जिसे अलग-अलग प्रसंगों में कवि कालिदास और भवभूति ने कहा है -इससे लगता है कि भारतीय चित्त सदा लोकानुरागी, लोकसजग, तथा किन्हीं अर्थों में लोकपक्षधर भी रहा है। इसीलिये आज लोक की बात उठाकर हम न केवल कविता में समकालीनता को सही परिप्रेक्ष्य में परख रहे हैं बल्कि उसके बहाने हम अपनी परम्परा को भी आज के सन्दर्भ में नवीकृत और व्याख्यायित कर रहे हैं। परम्परा का वह सबल पक्ष जो सदा कविता में विद्यमान रहा है रहता है और कविता को जिन्दा रहना है तो वह आगे भी इसी तरह वहाँ बना रहेगा

इस प्रकार इस लेख में गहन विचार हिन्दी कविताओं की भारतीय पृष्ठभूमि स्पष्ट करके उस प्रच्छन्न पार्श्व की परतें खोलता है जिसके संज्ञान से हम सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणा के देशज पक्ष की मूल्यवत्ता और योरोप के भाववादी बुर्जुआ चिंतकों की चालाकी को सरलता से समझ सकते हैं और ठीक यहीं, पाठक का वह प्रस्थानविन्दु भी शुरू होता है जहाँ से वह लोक की ओर श्रद्धापूर्वक स्वविवेक से मुड़ सकता है क्योंकि उसके मन में लोकसंस्कार के बीज फलित होने लगते हैं, फलतः उसके सोचने की क्रिया में व्यापक सकारात्मक बदलाव आने लगता है और उसका चिंतन गहन पार्थिव और दृष्टि, दूरदर्शी बन पाने को क्रियाशील होने लगते हैं क्योंकि संस्कृति के उद्भवकाल से ही हमारी लोकपरम्परा अत्यंत समृद्ध रही है जिसकी "भाषा, मुहावरा, शब्दसंपदा अत्यंत जीवंत हैं" और जिसके काव्य में "भावों की सबल संश्लिष्टता है जो संघर्षपूर्ण भारतीय जीवन की उदात्तता के परिणामस्वरूप मानवीय भावों के एक पृथक मूर्त संवेदना से उत्पन्न सौंदर्यबोध से जन्मते हैं क्योंकि कवि के शब्दों में "सौंदर्यशास्त्र कविता पर कोई अंकुश न लगाकर उसे ज्यादा मानवीय, सुन्दर, पूर्ण, यथार्थपरक और हर प्रकार से असरदार बनाने के लिये कुछ रचनात्मक सूझाव प्रस्तुत करता है (पृ. 51)। इसलिये कवियों को अपनी परम्परा से निःसृत सौंदर्यशास्त्र का गहन-गंभीर ज्ञान होना ही चाहिए। हाँ, यह बात अलग है कि सौंदर्यशास्त्र एक जटिल और संश्लिष्ट विषय है। जैसा कि स्वयं विजेंद्र कहते हैं, "कविता और यथार्थ, कविता और संज्ञान, विचारधारा, राजनीतिक चेतना, कवि की प्रतिबद्धता, काव्यबिंब, कविता का संरचनात्मक स्थापत्य, काव्यप्रक्रिया, कविता में वस्तुगत और आत्मगत की द्वंद्वत्मक स्थिति, वस्तु, भाव, संवेग, और कल्पना के परस्पर संबंध, काव्यसत्य और वस्तुसत्य का फर्क, सामाजिक यथार्थ के विविध स्तर, अंतर्वस्तु और रूप के द्वंद्वत्मक रिश्ते, कलात्मक संस्कृति, प्रकृति और कविता, सौंदर्य का सार, सौंदर्यशास्त्र और विचारधारा आदि पर भी विचार होता है (पृ.23)।" सचमुच ये ही सौंदर्यशास्त्र के दार्शनिक आधार की ज़मीन देते हैं जो कि इस पुस्तक के दूसरे लेख का वर्ण्य-विषय है। उपर्युक्त विश्लेषण में यह भी अंकनीय है कि मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र को व्यापक प्रतिष्ठा दी गयी है और लेनिन के 'प्रतिबिंबन-सिद्धांत की व्याख्या कठोपनिषद के 'सर्वम् जगत् प्राणे एजति' अर्थात् यह सारा भौतिक जगत हमारे प्राण में कंपित होता है, चमकता है की भारतीय पृष्ठभूमि से करके यह बता दिया है कि यह इतिहास की उस वस्तुगत अवधारणा से भिन्न नहीं है जो हमारे यहाँ काफी पहले ही विकसित थी। यही कारण है कि उनके सौंदर्यशास्त्र को पढ़ कर पाठक के भीतर जिस भावमानस का सृजन होता है उसमें भारतीयता का संश्लिष्ट रूप विद्यमान रहता है।

तीसरे आलेख में विजेंद्र जी ने कविता में जैविक रूप के स्वभाव की चर्चा की है जिसे वे कविता के सौंदर्यशास्त्र का एक बहुत जरूरी पक्ष मानते

हैं। इसे बिना समझे हम अपनी कविता के लिये 'सममितिमूलक जड़-सौंदर्य' का रूप चुन लेते हैं जिससे कविता स्वस्फूर्तता और तेजस्विता खो देती है। विजेंद्र जी का कहना है कि यह समय और समाज में निहित द्वंद्वत्मक प्रक्रिया से निरंतर विकसित होता है जिसे कवि अपने आसपास जीवन, प्रकृति और समाज को व्यापक यथार्थ की गहराई से टटोलकर और अपने समय की रुढ़ियों को तोड़ कर, यानि कि समय का अतिक्रमण कर प्राप्त करता है जो उसके द्वारा उपयोग में लाये गये रूपकों, पदविन्यास, लय, छन्द, शब्द-गठन, संरचना और कविता के पूरे स्थापत्य की पुनर्रचना में दृष्टिगोचर होता है।

चौथे आलेख का शीर्षक है - सौंदर्यशास्त्र और हमारी परम्परा। हमारे सौंदर्यशास्त्र के खनिज अपनी जातीय संस्कृति और परम्परा से ही प्राप्त होते हैं। इस मार्फत विजेंद्र ने कई अर्थपूर्ण सवाल उठाये हैं जो स्वयं सौंदर्यशास्त्र की दिशा-दशा तय करते नजर आते हैं, यथा- "आखिर अपने अतीत से कैसे जुड़े? उससे जुड़े या नहीं? क्या उससे अलग रह पाना हमारे लिये संभव है? क्या अपने अतीत को विस्मृत कर हम किसी महान रचनाकर्म की कल्पना कर सकते हैं? भारतीय सन्दर्भ में जब भी सौंदर्यशास्त्र का सवाल उठाये तो देखें कि मुहावरा खंडित तो नहीं।...क्या कविता में हम उसे दिखा पा रहे हैं? सौंदर्यशास्त्र का सवाल कैसे हल हो? कुल मिलाकर ये सारे सवाल हमें हमारे लोकधर्मी सौंदर्य की ओर ले चलते हैं जिसका एक कवि को अपने शब्दकर्म में अर्थपूर्ण अवगाहन करना चाहिए ताकि उसकी रचना उत्कृष्टता का कीर्तिमान बन सके।

पाँचवा आलेख सौंदर्य की मूर्तता पर है। इस अध्याय का अभिप्राय किसी कृति की समृद्धि में सौंदर्य की मूर्तता से है, अर्थात् जो जितनी मूर्त और सामाजिक सरोकारों से युक्त होगी, वह कृति उसी अनुपात में महानता के सोपान का प्राप्त करेगी। इसी प्रकार छठा अध्याय सौंदर्यशास्त्र के विविध आयामों को लेकर है। यहाँ कविता में सौंदर्य की उदात्तता के लिये विजेंद्र ने कवि को कविता में रूपकों की खोज कर जीवन के पैटर्न को मूर्त और अर्थगर्भित बिंबों से सजीव बनाने और बाहरी दुनिया यानि वस्तु जगत के यथार्थ को कविता में लाने पर जोर दिया है। कवि के शब्दों में ही "इससे लगता है कि कविता में औदात्य अर्थस्फीति और भावबोध के गौरव से ही रचा जाता है।"

इसके बाद के लेख का शीर्षक है 'मुक्त कविकर्म और सौंदर्यशास्त्र'। हम यह अनुभव करते हैं कि स्वतःस्फूर्त चित्त से रचना करना तभी संभव है जब कविकर्म पर कोई बाहरी (या आंतरिक भी) दबाव न हो अर्थात् कवि स्वायत्त और मुक्त हो। इस अध्याय में कवि के मुक्ति के सवाल को विजेंद्र जी ने बेहद गंभीर कविमन से उठाया है जो एक बहुत विचारणीय स्थापना है।[2]

अगले आलेख का शीर्षक है-काव्य उपकरण और सौंदर्यशास्त्र। विजेंद्र कहते हैं कि काव्य-उपकरणों के सांगतिक संयोजन से कविता में जादू पैदा होता है। कविता से काव्य-उपकरणों के खो जाने को वे कविता की त्रासदी समझते हैं और कविता की लय को कविता का जैविक हिस्सा मानते हैं। आजकल कविता में नवीनता लाने की होड में काव्य लय, रूपक,उपमा आदि को नकारने का जो फैशन चल पड़ा है उससे कविता निष्प्राण ही हुई है। यह कविता में आवेग और भाव लाने के अनिवार्य साधन हैं। इसलिये उनका मानना है कि "जो कविता अपने देश की सुदीर्घ और समृद्ध काव्यपरम्परा को आत्मसात करके विकसित नहीं होती वह न केवल संस्काररहित होती है, अपितु उसमें उच्च कोटि का सौंदर्यबोध भी नहीं होता। (पृ.72)" यह आलेख हमें हमारी सुदीर्घ और समृद्ध काव्यपरम्परा में काव्य-उपकरणों की महत्ता को समझाते हुए उसकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालता है।

इसके आगे 'लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र पर बड़ी विशद चर्चा हुई है। यहाँ ऐतिहासिक विकास-क्रम से पुनः जोड़कर 'लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र' को देखा गया है और यह रहस्योद्घाटन किया गया है कि किस तरह पूँजी का समाज में सकेंद्रण होने से कविता का लोकधर्मी सौंदर्यबोध प्रभावित हुआ है और वह कुलीनता की ओर गया है जहाँ न कोई बड़ा संकल्प है

न विजन। बाहर के काव्य-प्रतिमानों की नकल से कविता में रूपवाद और दुरुहता ही दिखाई पड़े हैं, वह आत्मप्रलाप जैसा होता है। विजेन्द्र इसके अनेक कारणों में एक प्रमुख कारण हमारे चित्त की रिक्तता मानते हैं। "यह पैदा होती है अपने इतिहास, अपनी परम्परा और अपनी जनता से बहुत दूर चले जाने से।

इस पुस्तक का दसवाँ आलेख है- 'वस्तु का पुनःसृजन।' यह सौंदर्यशास्त्र का बहुत ही महत्वपूर्ण पाठ है। हम जानते हैं कि पुनःसृजन की प्रक्रिया संश्लिष्ट होती है। पर दुःखद बात यह है कि वास्तव में कई कवि नकल को ही पुनःसृजन मानते हैं। यहाँ पुनःसृजन के सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांत का प्रतिपादन विजेन्द्र ने भारतीय सौंदर्यशास्त्र को नज़र में रख कर किया है। उनके अनुसार "पुनःसृजन का सिद्धांत समाज और प्रकृति की आंतरिक गतिकी से जुड़ा है। कविता इसी व्यापक अर्थ में जीवन, प्रकृति और संसार का पुनःसृजन है। सामाजिक गतिकी उसकी प्रेरणा है। दूसरे, पुनःसृजन का गहरा रिश्ता कवि की आंतरिक बनक से भी है। कवि की विश्वदृष्टि उसका सोच यह सब प्रमुख है

पुस्तक का ग्यारहवाँ अध्याय है- 'नैतिक आचरण और सौंदर्यशास्त्र', जो बताता है कि कविता का मामला कवि के आचरण के मसले से भी गहरे जुड़ा है। विजेन्द्र जी ने लैटिन भाषा के सौंदर्यशास्त्री होरेस और जर्मन सौंदर्यशास्त्री रिल्के के विचार को लेकर यहाँ कविता के मार्क्सवादी और बुर्जुआवादी, दोनों के आचरणों की विवेचना की है कि किस तरह पंत, अज्ञेय जैसे रूपवादी कवियों की रचनाएं हमारे निराला, नागार्जुन, केदार बाबू, त्रिलोचन, अरुण कमल, एकांत श्रीवास्तव जैसे कवियों की रचनाओं से अलग हैं जिसकी नैतिकता ही उन्हें कमतर महान बनाती है। उनका कहना है कि "पूँजी केंद्रित व्यवस्था न केवल कवियों-लेखकों की बल्कि श्रमिकों की भी मौलिकता और सृजनशक्ति को नष्ट करती है। वह सब मानवीय उच्च नैतिक मूल्यों को कुचल कर नष्ट कर देती है। ऐसी हालत में जनपक्षधर लेखकों का महत दायित्व है कि वे जनवादी मूल्यों का सृजन करके समानांतर जनसंस्कृति की रचना करें। एक नया सौंदर्यशास्त्र रचें।"

"सौंदर्यशास्त्र के प्रसंग में यह बात बार-बार उठाई गई है, उठाई जानी चाहिए कि मेरे सामाजिक व्यवहार और नैतिक आचरण का गहरा प्रभाव मेरी रचना पर पड़ता है। कबीर ने तो यहाँ तक कहा है कि 'जैसा हम खाते हैं वैसा ही हमारा मन बनता है। जैसा हम पानी पीते हैं वैसी हमारी वाणी होती है। (पृ.109)"

अगला लेख भाषा और सौंदर्यबोध पर है। यह कविवर विजेन्द्र के अनेक मूल्यवान विचारों में से एक है जिसमें भाषा के साथ सौंदर्यबोध के समानांतर उससे तादात्म्य का संधान किया गया है। वे भाषा में गहरी बिंबात्मकता को रचना की गतिशीलता और आवेग-सृजन के लिये जरूरी मानते हैं। इसलिये वे भाषा से रचना में बड़ी जिम्मेदारी का कार्य लेते हैं, वे सिर्फ भाषा में ऐसा यथार्थ ही नहीं कहना चाहते जो उन्हें वैचारिक अवधारणाओं से ही परिचित कराये, बल्कि भावबोध के उच्च स्तर पर समाज-सापेक्ष सौंदर्यचेतना और यथार्थपरक संवेदना की भी सृष्टि करना चाहते हैं। उनका विचार है कि "इसी से भाषा की रचनात्मकता के नये क्षितिज खुलते हैं। इससे भाषा के सही रिश्ते की पहचान होती है।... दरअसल भाषा और यथार्थ का गहरा रिश्ता उसके द्वारा सौंदर्यबोध, संवेदना, संस्कृति और अपने समय के संज्ञान का मूर्त स्थापत्य रचे जाने में है।(

और भी कई आलेख हैं इस पुस्तक में, जैसे कविता में मूल्यदृष्टि, वस्तु की रूपमयता, भाषा और यथार्थ के आयाम, 'आखर, अरथ, अलंकृति नाना, विचारधारा और सांस्कृतिक कर्म, संस्कृति और समाज। इन सभी लेखों में प्रस्तुत विचार वीथियाँ सौंदर्यशास्त्र के विविध पक्षों पर विचार करते हुए जनपदीय-जातीय-लोक सौंदर्यचेतना के विकास में नये प्रतिमान को रचते हुए आगे बढ़ती है। उनका अंतिम विचारलेख 'तुलसी:जातीय क्लैसिक की पहचान' है जहाँ वे तुलसी की कविता में शिल्प और सौंदर्य को भारतीय कविता का अत्यंत विकसित, बदला

हुआ, सार्थक और जातीय स्वरूप पाते हैं जिसकी काव्य-प्रक्रिया और काव्य-प्रतिमान आज भी अनुकरणीय और शलाघ्य प्रतीत होते हैं।

यहाँ मुख्य रूप से यह लक्ष्य किया जाना चाहिए कि अपनी परम्पराबोध के मौलिक, सूक्ष्म ज्ञान से ही विजेन्द्र जी काव्य के नये सौंदर्य और प्रतिमान की खोज करते हैं, उसको दरकिनार कर पाश्चात्य काव्यसौंदर्य के चिंतन से नहीं।

हम जिस आलोचना-समय में जी रहे हैं, वहाँ हिंदी आलोचना के पास चिंतन की मौलिकता का अभाव है। नये मानक और प्रतिमान रचने के जोखिम उठाने का न तो साहस है हमारे आलोचकों के पास, न बुद्धि-वैभव और न परम्परागत ज्ञान ही। कुछ को छोड़ कर, अधिकतर आलोचकों की स्थिति यह है कि वे अब तक न तो अपने जातीय साहित्य का अवगाहन कर पाये हैं, न पश्चिम को भारतीयता और लोक की कसौटी पर परख पाये हैं। सिर्फ भारतीय वाङ्मय को एक खंडित मानसिकता से समझने का प्रयास किया गया है, जिस कारण उनके मन में लोक-वस्तु का सम्यक आत्मसाक्षात्कार नहीं हो पाया है। हाँ, उन लोगों ने एक हिंदी-मानस जरूर रचा है, पर समालोचना के समुचित विकास के लिए यह जरूरी है कि अपनी परंपरा को न सिर्फ समझा जाय, वरन उसे अपने संस्कृति-सूत्र से जोड़ कर उससे सौंदर्यशास्त्रीय चिंतन की ऐसी अवधारणा विकसित की जाय जो साहित्य और जन की समृद्धि के काम आ सके। साथ ही श्रम की भाव=भूमि पर जन और लोक की प्रतिष्ठा के लिये मार्क्सवाद के भारतीय संस्करण को विकसित किया जा सके और पश्चिम की उन अतियों की तीव्र निंदा भी, जो हमारे साहित्य को खोखला, वक्र और भावहीन बनाते हैं। ऐसे समय में विजेन्द्र जी नई पुस्तक 'सौंदर्यशास्त्र: भारतीय चित्त और कविता' का बड़ा महत्व है, कारण कि उनके पास न सिर्फ परम्परा की सही और परिमार्जित विपुल समझ है, बल्कि उससे अपनी कविता को विकसित करने की व्यापक सोच-शैली और पश्चिम की उस सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणा की काट भी मौजूद है जो हमें भारतीय चिंतन-क्षेत्र से अपहृतकर निरे कलावाद-रूपवाद की दुनिया में घसीट ले जाते हैं जहाँ हमारी अपनी समृद्ध विरासत के खो जाने और समकालीनता के जड़ हो जाने का खतरा बराबर बना रहता है। पूरे पुस्तक में उनके काव्य-चिंतन और मीमांसा का पक्ष जितना सप्रमाण, ठोस, तार्किक, सहज और अर्थवान है उतना ही प्रगतिशील और वैज्ञानिक भी है। इससे भारतीय सौंदर्यचिंतन के विकास के नये क्षितिज तो खुले ही हैं, लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र को नई दशा-दिशा भी मिली है और विरासत में हस्तगत परम्परा का भाव समृद्ध हुआ है। साथ ही इसने भारतीय सौंदर्यशास्त्र में गहरे जड़ जमा रही निर्मूल मान्यताओं को झटका दे कर उसमें सकारात्मक हस्तक्षेप भी किया है जिससे भविष्य में जनपदीय साहित्य और लोक-साहित्य के दिन बहुरने के प्रबल आसार नज़र आने लगे हैं। इसीलिए विजेन्द्र अपने सौंदर्यचिंतन की उदात्तता के कारण हमें भविष्य के कवि भी लगते हैं।

जो पाठक जयपुर से निकलने वाली लोकचेतना की बहुप्रतिष्ठित त्रैमासिक पत्रिका 'कृति ओर' नियमित पढ़ते हैं, उन्हें मालुम होगा कि संपादकीय के बहाने विजेन्द्र जी भारतीय सौंदर्यशास्त्र पर महत्वपूर्ण कार्य वर्षों से कितने मनोयोग से करते आ रहे हैं ! यह पुस्तक उसी का परिणाम है।

कुछ दिन पहले मैं देहरादून की मासिक पत्रिका 'लोक गंगा' के जनवरी 2008 अंक में समीक्षक रेवती रमण जी की एक समीक्षा पढ़ रहा था। वैसे तो पूरी समीक्षा ही विजेन्द्र जी के रचनाकर्म के पार्श्व में जो शास्त्रीयता और सौंदर्यदृष्टि विद्यमान है, उसकी अन्यतम प्रस्तुति लगी, पर जो मन को सबसे अधिक भा गया वे उनके दो विचार हैं जिनका जिक्र यहाँ लाजिमी है। एक तो रेवती रमण जी ने यह कहा कि "मेरा खयाल है, हिन्दी के वे पाठक जिन्होंने मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन नहीं किया है, संक्षेप में विजेन्द्र की इस किताब से अपना एक भावमानस बना सकते हैं। बल्कि यह प्रयास अधिक सर्जनात्मक है। दूसरे कि "जो कार्य 'कविता के नये प्रतिमान से अपेक्षित था, विजेन्द्र ने उस दिशा में पहलकदमी कर दिखाई है।... एक पंक्ति में

यही कहना है कि जो कार्य 'कविता के नये प्रतिमान' के लेखक से अपेक्षित था, विजेन्द्र ने चुपचाप कर दिखाया।

वास्तव में यहाँ इस वक्तव्य के बड़े मायने हैं। रमण जी वस्तुतः विनयशील भाव से यह बतलाना चाह रहे हैं कि सौंदर्यशास्त्र पर इतना महत्वपूर्ण कार्य पहले ही दिग्गज आलोचकों के द्वारा हो जाना चाहिए था पर आज तक आलोचना के पुरोधों का ध्यान शिद्ध और गंभीरता से इधर नहीं गया, या कहें कि पूर्व में रचे गये कविता के प्रतिमान पर अब पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

खैर, मैं अपने विचार की इतिश्री इस बात से करना चाहूँगा कि विजेन्द्र जी के सौंदर्यशास्त्र की इस पुस्तक को पढ़ते हुए न मात्र मेरी कई जड़ धारणाएँ ध्वस्त हुई हैं बल्कि हृदय से यह महसूस हुआ है कि कवियों और कविता के पाठकों के लिये उनकी यह पुस्तक 'मणिकांचन योग' साबित होगा क्योंकि इस पुस्तक में काव्यसौंदर्य के नये प्रतिमान की गहन खोज हो चुकी है जो विजेन्द्र जी के अपने दीर्घ समय की कविता के आत्मसंघर्ष और उसकी विचारणा की कार्यसिद्धि का फल है

विचार-विमर्श

मनुष्यता की मातृभाषा के रूप में कविता की प्रतिस्थापना ने लोकधर्म को सदैव केन्द्र में रखा है। यह धर्म कविता व मनुष्य के समानान्तर अनादिकाल से आज तक विद्यमान रहा है। इसीलिए जब कभी मनुष्य के स्वाधीन होने का प्रश्न उठा, कविता ने उसे रास्ता दिखाया। मनुष्य ने अपने जीवन में स्वातंत्र्य के मूल अर्थात् लोकतंत्र को पहचाना या नहीं, किंतु कविता की बहुआयामी दृष्टि ने जीवन की वास्तविकता को सदैव प्रस्तुत किया। इसी कारण कविता की आलोचना मनुष्यता के घेरे में ही संभव है। वस्तुतः कविता का कोई देश नहीं होता, वह तो सार्वभौमिक होती है, उसमें मनुष्य की संवेदना अभिव्यक्त होती है। यह संवेदना दूसरे भू-भाग के निवासी को भी समान रूप से प्रभावित करती है। कविता का यह लोकधर्म ही उसकी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का आधार तय करता है। [3]

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में कविता का स्वर अपने इतिहास से कुछ अधिक मुखर है। कविता की अन्तर्वस्तु में तीव्रगामी बदलाव आया है। कवि के समक्ष जब इस कालखण्ड में विस्मयकारी यथार्थ उपस्थित हुए, तो कविता का स्वर भी लोक की पीड़ा को सामने रखने हेतु आतुर हो गया, यद्यपि व्यवस्था उसके पक्ष में नहीं थी। समकालीन कविता के यथार्थ के बारे में डॉ. परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं, "प्रासंगिकता और सृजनशीलता, प्रतिबद्धता और अजनबीपन, जादुई और क्रांतिकारी, यथार्थ और अयथार्थ, तात्कालिक और मिथकीय, सपाट और काव्यात्मकता के तनाव में आज की कविता हमारे समय का मार्मिक साक्ष्य बन चुकी है। उसके अनुभव संसार और स्थापत्य का सामना हमें आज की जटिल स्थितियों के प्रति जागरूक बना सकता है।"

भूमंडलीकरण के दौर में पूँजीवादी सभ्यता का जादू जब आम आदमी के सिर पर चढ़कर बोल रहा हो, उसकी मस्तिष्क की खिड़कियाँ बंद हो गई हों, बाजार की चमक में उसकी आँखें विमुग्ध हों; ऐसे समय में लोकधर्म के गुरुत्तर दायित्व को वहन करने हेतु कविता का यथार्थ भी स्पष्ट होना आवश्यक है। स्वप्निल श्रीवास्तव के अनुसार, "खासकर यदि हम यथार्थ की बाद करें, तो आज का यथार्थ मारक और अविश्वसनीय है। वह फैंटेसी के आगे का यथार्थ है। आज के यथार्थ का चेहरा रक्त-रंजित और अमानवीय है। यथार्थ हमारे सामने विस्मयकारी दृश्य प्रस्तुत करता है, जो कल्पनातीत है।"

लोकधर्म को चुनौती देने वाले, विस्मयकारी यथार्थ के रूप में जो कारक वर्तमान समय में उपस्थित हुए हैं, उनमें प्रमुख हैं- मुक्त बाजारवाद, विकृत उपभोक्तावाद, राजनीतिक अधिनायकवाद, पूँजीवादी प्रभुता, भ्रष्ट आचरण, श्रम का अपमान, मूल्यों का विघटन, हिंसक वृत्तियों का उभार, जातीय-धार्मिक उन्माद आदि। यद्यपि ये कारक वैश्विक हैं, किंतु उनकी फाँस में आम भारतीय बुरी तरह आ गया है। दूसरी ओर

साहित्यिक जगत् वैचारिक अतिवाद से ग्रस्त होकर लोक को पीड़ित करने वाले इन तत्त्वों का सामना करने के बजाय वामपंथी-दक्षिणपंथी खेमे में उलझकर भटकाव की ओर बढ़ रहा है। उपस्थित चुनौतियों का सामना करते हुए आने वाले समय का मार्ग तय करने हेतु कविता का स्वर निराला, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल की भाँति स्पष्ट अभिव्यक्ति का हो, यह आवश्यक है।

विकट-समय में कविता-जगत् के बड़े हस्ताक्षर कविवर विजेन्द्र हमारे समय के अग्रगामी कवि हैं। उनकी उपस्थिति कवि-पीढ़ियों के बौद्धिक रक्त-संचार को चेतनावान बनाने में सक्षम है। 'त्रास', 'जनशक्ति', 'कठफूला बाँस', 'चैत की लाल टहनी' जैसी कृतियों से रचित विजेन्द्रजी द्वारा रचित इस दशक की महत्वपूर्ण काव्य-कृतियाँ हैं- 'घना के पाँखी', 'तुम्हारा पहले खिलना', 'वसन्त के पार', 'कवि ने कहा', 'भीगे डैनों वाला गरूण', 'बनते-मिटते पाँव रेत में', 'मैंने देखा पृथ्वी को रोते हुए', 'बेघर का बना देश' आदि। इसके अतिरिक्त काव्य-नाटक, सौंदर्यशास्त्र और समकालीन समीक्षा पर प्रकाशित आलेख कविता के युगधर्म को स्पष्ट करने में सहायक रहे।

कविवर विजेन्द्र के काव्य पर कालिदास से लेकर वाल्ट व्हिटमैन का प्रभाव दिखाई देता है तो त्रिलोचन का लोकानुराग और मुक्तिबोध की परम्परा का निर्वहन भी है। ज्ञानेंद्रपति लिखते हैं- "विजेन्द्र के कवि की बनावट में परम्परा और समकालीनता के बोध की युगपत् उपस्थिति को पहचानना जरूरी है। एक ओर तो उसकी जड़ें हमारे क्लैसिक्स में हैं, साथ ही लोक-संस्कृति में; दूसरी ओर उनकी दृष्टि द्रष्टात्मक भौतिकवाद के विज्ञान से माँजी गई है। जन-हितैषणा उसकी कवि-मुद्रा नहीं, आत्मिक चिंता है।" (कृति ओर, अंक 68-70, पृ.77) स्वयं विजेन्द्र को 'लोक का जाप' करना प्रिय रहा है। उनका कथन है- "पिछले दिनों हमारे कुछ साहित्यिक मित्रों ने हमको 'लोक का जाप' करने वाला कहकर जो गौरव प्रदान किया है, उसके लिए हम बड़ी विनम्रता से उनके आभारी हैं। भले ही बहुत देर से कहा। पर दुरुस्त कहा। कैसा सुखद संयोग है कि कुछ दिनों पहले संसद से गाँव की पगडंडियों तक जनता लोक तथा जन का ही जाप करती रही। हमें लगा अब ये दोनों शब्द एक भौतिक शक्ति का रूप ले रहे हैं।" (कृति ओर, अंक 62, पूर्व कथन, पृ.19)

अपनी लम्बी काव्य-यात्रा में कविवर विजेन्द्र का सद्य-प्रकाशित काव्य-संकलन 'बेघर का बना देश' समय के सच का सामना करता हुआ दिखाई देता है। संकलित कविताओं में एक ओर दुखार्तानां, श्रमार्तानां तथा लोकार्तानां श्रेणी के लिए संघर्ष का लोकधर्म है, तो दूसरी ओर समय के साथ उपस्थित विध्वंसकारी शक्तियों का सामना करते हुए कविता के क्षेत्र में लोकतंत्र की प्रतिस्थापना का आग्रह दृष्टिगोचर होता है। कविताओं में नये सौंदर्यशास्त्र के साथ भाषा का नया मुहावरा खोजा गया है, जो अधुनातन है। कविता से विलुप्त होती लय को पुनः केन्द्र में लाने का अभिनव प्रयास इस कविता-संग्रह को विशिष्ट बनाता है। इन कविताओं में परिवेश की खूबियों को भावी संकेत के साथ उकेरा गया है, जहाँ उनके चित्रकार का व्यक्तित्व उभर कर आता है। यह कविता-संग्रह विवेचनीय है।

विक्षुब्ध लोक के जीवन में बदलाव लाने हेतु कवि ने 'लोक का जाप' किया है। कवि का निष्कर्ष यह है कि प्रगतिशील लोकतांत्रिक भारत में श्रम का अभी तक सम्मान नहीं हुआ है। सामंती व्यवस्था भले ही न रही हों, लेकिन मनोवृत्ति में कुछ खास बदलाव नहीं आया है। 'अंधेरे की दस्तकें' में कवि ने श्रम का प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए फसलों भरी पगडंडियों से गुजरने को तीर्थयात्रा बताया है। वहीं 'विरल क्षणों का गाँव' में कवि पसीने की हर बूँद का हिसाब माँग रहा है-

देखा है मैंने/झौंपड़ियाँ उजड़ते/फिर राख के
ढेरों पर उठी भव्य इमारतें/तुम्हें देना होगा हिसाब
पसीने की हर बूँद का/लूट-खसोट की इस आँच में/
झुलसा है गरीब ही।

'तलछट' कविता में पुलिस के डंडे खाते निर्दोष किसानों को कनपटी से बहते खून को पौछते देखता है जो अपनी जमीन का हक माँग रहे हैं। दूसरी ओर बहुमूल्य खनिज सम्पदा के लुटेरों को 'पसीना' में अनअघाये दस्यु कहकर पसीना को आत्मा का सत बताया है। समाज की कुत्सित मनोवृत्ति को उजागर करते हुए कवि ने निरन्तर दमन के बाद भयानक परिणामों की ओर संकेत किया है। श्रमनिष्ठ समाज का शोषण एक दिन प्रतिशोध लेने को विवश कर देता है, जिसे समय पर पहचानना जरूरी है। यदि सामंती मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं आता है, तो कवि स्पष्ट रूप से कह देता है-

पृथ्वी के गर्भ में लावा/उबाल खाता मैग्या/फूट कर जब निकलेगा एक दिन/नहीं रोक पायेंगे सैलाब आदिवासियों का/उफनता ज्वार/पछाड़ें खाता सागर/ वे होने को हैं तत्पर/धनुष-बाण उठाने को/ आने लगी हैं धनियाँ/वृक्ष वन घासों से/मरेंगे, मारेंगे/ जमीन नहीं छोड़ेंगे।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण में जिन वंचित वर्गों की समस्याओं को उठाया गया, उनमें किसान को अभी तक न्याय नहीं मिला। कवि की दृष्टि में कविता में 'धरती जोतने वालों से संवाद' नहीं हो रहा है। लड़ना ही उनकी नियति बन चुकी है। कवि ने किसान की अन्तर्व्यथा को, उसकी गरीबी को, उसके खुशक चेहरे को देखने का तथा उसकी पीड़ा को व्यक्त करने का कार्य 'मेरे चुप रहने की परीक्षा', 'अपराध गरीबी का', 'धरती जोतने वालों से संवाद', 'देखता हूँ खुशक चेहरा' आदि कविताओं में किया है। कवि की दृष्टि है कि भूमि को उर्वर बनाये रखने का अदम्य कार्य करता हुआ किसान भूखा है, आत्महत्या करता है। श्रम से प्रेम करने वाला अभावग्रस्त है। उसकी पसीनों की बूंदों की चमक के साथ किसानों की व्यथा को स्वर देते हुए कवि कहता है-

अंकुरित बीज में/चमकता किसान का पसीना/गहरे आघातों के दुख में/तपा हृदय का शांत विक्षोभ/ मल मूत्र में जन्म लेते शिशु का रूदन/हल्यारों के काँपते हाथ/गरीबी में नहीं देता कोई भी साथ।

समाजवाद की कल्पना और उसके आने की आशा अब स्वप्न प्रतीत होने लगी है। समय की गति के साथ शैतानी पूँजीवादी समाज यांत्रिक-सभ्यता के साथ उपस्थित हुआ है, जिसमें लोक के श्रमनिष्ठ प्रहरी श्रमिक, किसान, दलित, आदिवासी वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। 'बे-घरों के घर' कविता में कवि का ध्यान रामचरण पर जता है जो बापू के जन्मदिन पर राजभवन पथ पर पतला चिथड़ा बिछाकर दिनभर की थकान के बाद सोने की तैयारी कर रहा है। कवि का 'रामचरण' भगवत रावत की 'बैलगाड़ी' में बैठा हुआ मनुष्य है, जो महानगरीय भीड़ में सभ्यता का आखिरी इंसान प्रतीत होता है।

पूँजीवादी यांत्रिक सभ्यता ने पूरी दुनिया को 'शापिंग काम्पलेक्स' में बदल दिया है। कुमार अंबुज ने जिसे मनुष्यों की बजाय वस्तुओं में बहुत अधिक निवेश माना है। यह सत्ता निर्मम होती है, जहाँ आम आदमी को हर बार बेघर होना पड़ता है-

गहन दुख में भी/सत्ता का वर्चस्व निर्मम/ सालता हरदम/गड्डों से भरा गँदला जल/ रम्मन, खुदा बख्श, अलीहसन/जो हुए हैं बेघर हर बार।

पूँजी के प्रभाव का चित्र कवि ने 'रहने दो अंधेरे' में खींचते हुए लिखा- क्या करूँ/इन गगन चुंबी कोठियों का/ आ रही गंध पकवान की/पसलियाँ दिखती कमेरे इंसान की/ टोटा पड़ा रोटियों का/बेलबूटे, पच्चीकारी, शब्दकारी, शिल्पकारी में/दिखती नहीं धरती की गहन पीड़ा।

वैश्विक स्तर पर आर्थिक उदारीकरण आधारित नई विश्व-व्यवस्था, उच्च तकनीक, जनसंचार का प्रसार, विश्व ग्राम के जत्रत की हकीकत को पूरी दुनिया देख रही है। कभी-कभी यह महसूस होता है कि यह

साम्राज्यवादी शक्तियों का नव-उपनिवेशवादी संस्करण तो नहीं है। 'शांतिदूत' में कवि उनकी मनोवृत्ति को समझ जाता है जो स्वर्णभरी मुद्राओं की जेबें भरकर आता है और हमें पीड़ाओं को गर्व में धकेल जाता है। इन शोषकों के माथे पर मनुष्य की विनाश लीलाएँ हैं और शब्दों में ध्वंस की राख झड़ती है।

'अनार का पेड़ आँगन में', 'भू तत्वीय आसमान', 'दैत्य को पछाड़ो' आदि कविताओं में कविवर विजेंद्र ने नव उपनिवेशवादी शक्तियों के दुष्क्र को उजागर किया है। यही नहीं कवि को अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक आदि गरीबों के शत्रु प्रतीत होते हैं, उन्हें पछाड़ने का आह्वान करता है-

वह बहुत ताकतवर है/कूर कुचाली और महाकपटी / विश्व बैंक उसका घातक अस्त्र है। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष उसका कुचक्र/विश्व व्यापार संगठन उसका इंद्रजाल/ वह किसी का मित्र नहीं है। जो भी उसके पंजे से दबा है/वह सबसे बड़ा शत्रु है/पूरी दुनिया के गरीबों का।

कविवर विजेंद्र की कविता सीधे जनपद से आती है, फलतः कविता में ग्रामीण जीवन की सौधी महक विद्यमान है। जहाँ कवि का बचपन बीता, सुख-दुःख का साक्षी बना और संघर्ष की प्रेरणा बनी। 'फरीदाबाद की भोर' में कवि को अब फलदार दरख्त, नदी, ताल, प्रपात, दूब, नीम आदि नज़र नहीं आते। मनुष्य की उद्दाम लालसाओं का शिकार यह ग्रामीण जीवन भी हो गया है। 'तलछट' में कवि के मन की अन्तर्व्यथा उजागर हुई है, जहाँ जीवन में न केवल संघर्ष रहा है, बल्कि स्वाधीन भारत में लोगों की दुर्दशा का जीवन्त चित्रण भी है। 'सुबह' कविता में कवि को जीवन के रहस्य गुफाओं में नहीं, बल्कि लड़ते हुए आदमी की क्रियाओं में दिखाई देते हैं। साथ ही कवि ने आशा नहीं छोड़ी है, वह घोषणा करता है-

वो समय जरूर आयेगा, जरूर/दुनिया के लोग जानेंगे/दुनिया में लोग कितने त्रस्त हैं। कितने भूखे-प्यासे/कुपोषण से मरते हुए।

कवि की जिजीविषा, अदम्य साहस और सतत संघर्ष का स्वर 'खुलेंगे कपाट', 'सुबह', 'धातुक खनक' में दिखाई देता है। इसके साथ ही आने वाले समय को आशावादी दृष्टि से देखने वाली कविताएँ 'इतनी धूमिली रोशनी में', 'सोचने से पहले देखो', 'पवन गीता का अवसान' आदि हैं। 'तमस द्रव्य ऊर्जा' में कवि प्रत्येक क्षण में जीवन के नये प्रतिरूप का दर्शन करता है। जहाँ कभी जन्म रूकता नहीं, निर्द्वन्द्व आगे बढ़ता है। 'खुलेंगे कपाट' में कवि मुक्ति के स्वर तलाश रहा है-

सुनूँगा हर बार/ लहरों में बजती/तारों की घंटियाँ/ मेरे पाँव सने दलदल में/हाथों में कालोंच/नमक के पानी में घुलने का सत्राटा/जल पाँखियों[4] की प्रजनन आतुर चीखें/ मेरी मुक्ति के लिए खुलेंगे जंग लगे कपाट।

कविवर विजेंद्र ने अपने आंतरिक उद्गारों को प्रकट करने से पूर्व कविता से संवाद स्थापित किया है। उनकी अभिव्यक्ति में कविता लोकतंत्र की पर्याय बनकर उभरती है। वह संघर्ष की गाथा के रूप में कविता को ही स्वीकार करता है। कवि ने स्वयं के जन्म के साथ शब्द के जन्म को स्वीकार कर अपनी रगों में कविता की जड़ों को तलाश करने का प्रयत्न 'मेरा जन्म' कविता में किया है। साथ ही 'कविताएँ जो मुझे प्रिय हैं' में कवि की उत्कट इच्छा है कि वह लोक से जुड़ा रहे, क्योंकि यह लोक से जुड़ाव ही उसे गतिशील बनाये रख सकता है। 'तलछट' कविता में कवि अपने आँसू दिखाना नहीं चाहता, बल्कि अपना एक ध्वनि-राग बनाना चाहता है जो अपनी धरती और देश को बचाये रखे। कवि सरस्वती से आह्वान करता है-

ओ कविता की देवी/तुम सोई हो कहीं/निविड़ अँधेरी छाँह में/या कहीं धरती की कोख में/

तुम जागो/कवि छंद खो चुका हैं/भूखा है
झूठे यश को/मुट्टी भर सिक्कों में/बेचता
ईमान को ।

कविताओं की भाषा में विविधता है । परम्परागत प्रतीकों के स्थान पर कवि ने अपने लक्ष्य की पहचान करने वाले उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । नये सौंदर्य का बोध कराने वाली भाषा चलताऊ भाषा से बिल्कुल अलग है । आक्रोश के क्षणों में बिम्बवान स्वाभाविक पीड़ा को उजागर करती तिवक्त शब्दावली भी कविता की अर्थवत्ता बढ़ा देती है । जहाँ कहीं कवि भाव-विभोर है, तो संबोधन शैली में आत्म-साक्षात्कार भी बिम्बमय हो गया है, जैसे-

ओह! कितना गहन है अवसाद/सुनता हूँ
अंधेरे के छलकते से प्यालों में तिरती रात
की ग्रेनाइट छायाएँ ।

अथवा

प्रतिमानों के भगनावशेष में/सिर धुन रही कविता/
खण्डहरों में चीखते पत्थर/रहूँगा अभी सहने को ।

समकालीन कविता में 'लय' की जिस तरह उपेक्षा हुई है, उसे न्यायोचित नहीं कहा जा सकता । कवि और आलोचक बोधिसत्व की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है, "छंद और रस का जितना नाश तथाकथित राजनैतिक कवियों ने किया उतना और किसने किया होगा । इस पूरी पीढ़ी ने कुल पच्चीस छंदबद्ध कविताएँ भी न लिखी होंगी । इस पीढ़ी के द्वारा किया गया हिंदी काव्य का काव्यात्मक अपकार अगले कई सालों में शायद ही मिटाया जा सके ।" (वागर्थ, दिसम्बर 2012) लेकिन कविवर विजेंद्र के शब्द हैं कि कविता में काव्यलय को मैं बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ । यह दृष्टि उनकी प्रत्येक कविता में दिखाई देती है, जहाँ आन्तरिक लय विलुप्त नहीं हुई है । कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

समझते हम पशु जिन्हें
कहने लगे हालात अपने
सुनकर लगा दिया कँपने ।
इसी तरह-
चाहिए अन्न हर पेट को
रोशनी हर आँख को
आकाश हर पाँख को

समग्रतः विजेंद्र रचित कविताओं का स्वर व्यवस्थागत विद्रुपताओं पर आक्रोश व्यक्त कर चुप रहना नहीं है, बल्कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए नए आयाम प्रस्तुत करना रहा है । आज जब हिन्दी कविता को लोक की सामुदायिक भावना से तोड़ने और छिन्न भिन्न करने की कोशिश की जा रही है और जब हिंदी कविता में जब जनमानस की अभिव्यक्ति नहीं है, तब कविवर विजेंद्र की कविताएँ आश्वस्त करती हैं कि ये मात्र बौद्धिक जुगाली या वैचारिक समस्याओं का अरण्यरोदन करने वाली नहीं, बल्कि लोकधर्म की रक्षा करने वाली और कविता के भीतर लोकतंत्र की स्थापना करने वाली है ।

परिणाम

अगर आप कविताओं में रंग संयोजन, दृश्य-बिम्ब और तूलिकाओं के सघन स्पर्श को महसूस करना चाहते हैं और चित्रकारी में कविता तलाश करना-चाहते हैं तो हमारी हिन्दी के एक विरल कवि हैं-विजेंद्र । ना सिर्फ कविता रचकर बल्कि कविता में जीकर, कविता के अंतःसौंदर्य को चित्रकारी में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते हैं । लैटिन के महान कवि होरेस का वह कथन इनके संदर्भ में बिलकुल प्रासंगिक हो जाता है कि-"चित्र मूक कविता है" । इस संदर्भ में आलोचक जीवन सिंह का कहना है-"विजेंद्र स्वयं चित्रकला को कविता का पूरक मानते हैं।...चित्र कविता का पूरक इस अर्थ में भी है कि दोनों में सघन ऐंद्रिकता का बोध होता है।'आधी रात के रंग'(The midnight colors) शीर्षक कविता की अंतिम पंक्तियाँ इसी सघन ऐंद्रिकता और विरल भावबोध का प्रमाण है-जिसमें कविता और कला का भेद-अभेद मिट जाता है।सौंदर्य गुलाबी

हर्ष के साथ अवतरित हुआ है और मन कविता में लगा है।इस तरह अपने आप अपनी पेंटिंग पर कविता लिखने का या अपनी कविता पर पेंटिंग बनाने का अद्भुत काम इस कवि ने किया है-'आधी रात के रंग' जैसे अनूठे संग्रह में। जहाँ कविता और कला एक दूसरे में संगुम्फित हो गयी है।

जबकि मैं महसूस करता हूँ

सुर्ख रंग की चीखें
आह्लाद भूरे रंग का
काले का भ्रूभंग
गुलाबी रंग का हर्ष ।
ये आधी रात के रंग
एक साथ मिलकर
नीरवता तोड़ते हैं
वे रात के दुलकते बालों को
काढ़ रहे हैं।

अपनी पेंटिंग पर कविता टैगोर ने भी लिखी है और बाद में अन्य भाषाओं में अनुवाद भी किया है। इसी का विस्तार विजेंद्र के यहाँ हुआ है।जहाँ विजेंद्र ने कालिख से सनी रात में चित्रकारी का नायाब नमूना पेश किया है तो चाँद के उजास में कविता लिखने की हिम्मत का उदाहरण भी दिया है।हिन्दी और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में एकसाथ यह काम अपने आप में ऐतिहासिक भी है,समीचीन भी,प्रासंगिक भी।

विजेंद्र जी के कवि-कर्म को अर्द्धशताब्दी पूरे होने को है।अपने लम्बे काव्य-जीवन में इन्होंने बहुत कुछ लिखा है-वह भी प्रचुरता के साथ।सिर्फ कविता में नहीं बल्कि गद्य में भी-पर सबके केंद्र में या तो कविता है या कविता को लेकर गंभीर चिंतन।'त्रास' से लेकर 'बुझे स्तंभों की छाया' अर्थात् 1966 से लेकर 2012 तक इनके कविता संग्रहों की प्रचुर दुनिया है।तेईस कविता-संग्रहों की भरी-पूरी दुनिया से इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है।कवितायें उत्कृष्ट हैं,मजबूत हैं,सुगठित हैं तो कवितायें साधारण भी,कमजोर भी,अनगढ़ भी हर तरह की कवितायें इनके यहाँ हैं।भले ही सारी रचनाएँ इनकी उत्कृष्ट नहीं हो,हालांकि किसी भी कवि की सारी रचनाएँ उत्कृष्ट नहीं होतीं चाहे महान से महान कवि ही क्यों ना हो?तो फिर विजेंद्र से इस तरह की उम्मीद लगाना भी उनकी रचनाशीलता के साथ खिलवाड़ करना है।इनके लेखन की भी अपनी सीमा है-जैसे कि सभी की।बात ये महत्वपूर्ण है कि इन्होंने निरंतरता में सर्जना की है और बेहतर रचा है।

'भीगे डैनों वाला गरुण' 2010 में बोधि प्रकाशन से पुस्तक-पर्व योजना के तहत एक सेट में प्रकाशित हुआ संग्रह है।जिसकी कीमत मात्र दस रुपए है, और यह लगभग विजेंद्र की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह है।इसमें इनकी 1969 से लेकर 2009 तक की कवितायें हैं।इतने लम्बे समय की कविताओं में मुख्यतः इनकी लोकधर्मी चेतना,जीवनानुभावों की विविधता,जनसंघर्षों के प्रति आस्था,जीजीविषा,कविताई का स्थापत्य,संवेदना का सुसंगत और सुगठित रूप एक साथ देखने को मिल जाता है।इन कविताओं की दुनिया में सम्बन्धों का संयोजन है, जो एक खास तरह के मानवीय सरोकार के साथ जिनसे कविताओं में रचनात्मक शक्ति का विकास हुआ है।मनुष्यों के छल-छद्म,पाखंड और सम्बन्धों में धोखाधड़ी,काईयापन से कवि हृदय का त्रस्त होना भी स्वाभाविक है।संवेदनहीन दुनिया से कवि को चिढ़ है-इसीलिए कवि जब आँख खोलकर दिल टटोलता है तो मन मसोसकर रह जाता है,फिर कविता लिखता है-

किसके पाँव पखारूँ भाया
किसकी करूँ मनौती
जिसको भी गले लगाऊँ
करता दिखे कनौती

विजेंद्र के अनुभवों की दुनिया भी एकदम विरल है,जिस अनुभव में सम्पूर्ण जीवन का यथार्थ अलग-अलग समय में अलग-अलग ढंग से

प्रेषित होता है। अनुभवों के विस्तार से विजेन्द्र कविता को भावों के उच्चतम स्तर तक ले जाते हैं। वे सूक्ष्म-से सूक्ष्म वस्तुओं को कविता में ले आने की ताकत रखते हैं। साथ ही गहरे मानवीय सरोकार और तरल भावावेग से युक्त ये कविताएं लोक के जीवन के सौंदर्य को रचने का दावा करती हैं। इन कविताओं की त्वरा और ताकत सर्वथा भिन्न और देखने योग्य है। इसी संग्रह में एक कविता है- 'एक बच्चे के जन्म पर'। इस कविता में आवाज़ के माध्यम से कवि ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड में एक बच्चे के जन्म के समय की आवाज़ को पूर्वजों और वंशजों के बीच से गुंजित कराते हैं। दरअसल में इसी आवाज़ का नाम परंपरा है, जिसे कवि पूर्वजों से ग्रहण कर वंशजों को वितरित करना चाहता है। या यूँ कहिए कि पूर्वजों से सुनी आवाज़ को वंशजों से सुन लेना ही यहाँ परंपरा-बोध है। [3] यह कविता भावात्मक विस्तार की ऊँचाइयाँ छूकर अनुभव जगत में प्रकृतिक अवयवों से संवाद कर एक भरी-पूरी अनोखी दुनिया में अनायास प्रवेश कर जाती है, जहाँ कविता और चित्र का भेद मिट जाता है। कुछ पंक्तियाँ देखिये-

ये पठारों की तरह कठोर, पतझर की तरह सूखी
और वर्षा की तरह गीली।
मैंने कई बार इन्हें अपने निजी प्यार की संज्ञा दी है
आदमी के मुक्त होने से पूर्व
सारा देश इन्हें हवाओं के साथ सुनता है.....

इस एक कविता में कवि ने एक-एक पंक्ति में नए-नए अर्थबोधों को पिरोकर रख दिया है। पाठ में सुरुचि उत्पन्न करनेवाली यह कविता बिम्ब-सृष्टि में गज्जिन है। प्रत्येक पंक्ति में नए-नए प्रतीकों को संजोया गया है-उपमा की सहजता के साथ। 'उपमा कालीदासस्य' वाली शास्त्रीय उक्ति यहाँ चरितार्थ हो जाती है।

'एक बच्चे के जन्म पर' कविता में ही कवि आगे कहता है-जिन आवाजों को वे सदियों से सुन रहे हैं वे समुद्र की तरह विशाल और मरुस्थल की तरह उतपत हैं। कवि ने आवाजों के उद्गम-स्थल धरती के गर्व को माना है। इसीलिए पृथ्वी के जितने अवयव हैं सबसे कवि ने उस आवाज़ को चीन्हे में सहायता ली है। पठार, मरुस्थल, समुद्र, पतझर, वर्षा से लेकर हवाओं की तरह यानि सभी प्रकृतिक वस्तुओं से निःसृत आवाज़ है-वह। या सभी प्राकृतिक वस्तुएँ उस आवाज़ को (ध्वनि को) शक्ति देती हैं, ऊर्जा ग्रहण कराती हैं। ये बाँक की तरह पैनी और फूलों की तरह नरम है, ठीक अगली पंक्ति में घने जंगल कटते समय जाड़े की अंधेरी रात में उस आवाज़ को सुनना-पूरी प्रकृति को बचाने की कवि की युक्ति नहीं तो और क्या है?

कवि की प्रतिबद्धता आगे गहरे अर्थों में मानवीय हो जाती है जब कवि बच्चों की हंसी, माँ के प्यार और दोस्त की सच्चाई की संज्ञा से उस प्यार को पहचानता है। हर बार लौह-शृंखलाओं की आकृतियों का उभरना यहाँ पर साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध लड़ते सर्वहारा की संगठित शक्तियों का प्रतीक है। काँटेदार तारों के क्रूर बाड़े, धातुओं का चुपचाप पिघलना उसकी बेचैनी, जहरीले हथियारों से पड़े भेदे निशान की तरह है वो आवाज़ जिसको कवि सुनता जाता है। एक आदमी का किसी और के लिए फसल काटकर अपना जिस्म सुखाने का अर्थ स्पष्ट है कि श्रम से पसीना किसी और का बहे और श्रम का लाभ कोई और ले जाये। आगे कवि लिखता है- 'रात में खादर का किसान खेत में पानी काटता है/जब माँ बच्चों को दूध पिलाती है/जब मैं तुम्हारे सूखे बालों में गुड़हल का फूल खीँसता हूँ...' यह उस सर्वहारा की आवाज़ के साथ अपना संतुलन बैठाकर आवाजों का संतुलन बनाना भी वैज्ञानिक साउंड थेओरी का विस्तार लगता है, जिसका वेवलेंथ कॉस्टेंट नहीं है। कवि अपनी आँखों से जंगल के उस मनुष्य को भी देख लेता है जो काले-काले नरककाल हैं, जिसके घने बाल उसके जिस्म ढकने के काम आते हैं। कवि उस मनुष्य की बात करता है जो डार्विन की विकसवादी अवधारणा में कहीं बहुत पीछे छूट गया हाशिये का मनुष्य है, जिन्हे आदिवासी' की संज्ञा दे दी गयी है। उस आदिवासी समाज के पक्ष में कवि का खड़ा होना उन्हें वाजिब कवि तो बनाता ही है, साथ-ही-साथ

उन्हें मुकम्मल मनुष्य भी बनाता है। एक बच्चे का जन्म कवि के लिए उस विराट का आगमन है जो सम्पूर्ण मनुष्यता, अखिल विश्व और पूरे ब्रह्मांड के कण-कण को प्रभावित करनेवाली भविष्योनमुखी स्वर का द्योतक है।

विजेन्द्र की कविताओं की दुनिया इतनी विस्तृत है (और इतनी प्रचुरता में इनका लेखन है) जिसपर लिखना दुरूह कार्य तो है ही। पर जहाँ तक मेरी दृष्टि जा पायी है उसके आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि विजेन्द्र हमेशा अनछूए विषयों को ही कविताओं में छूते हैं। सारी अनछूई वस्तुएँ इनकी कविताओं की विशेषता बन जाती है तो कहीं पर वह अर्थ के विपरीत अर्थों को भी ग्रहण कर लेती है। इससे कविताओं के अंदर कभी भावों सरलीकरण हो जाता है तो कहीं पर अर्थ दोष भी उत्पन्न हो जाता है।

इनके अंदर लोक की गहरी समझ और विश्व कविता का गंभीर अध्ययन दोनों हैं, जिससे इनकी कविताओं की रचना-प्रक्रिया मजबूत होती गयी है, शिल्प सुगठित होता गया है, भाषा निखरती गयी है। विजेन्द्र के सौंदर्य दृष्टि की जितनी प्रशंसा की जाय कम है, सौंदर्यशास्त्र पर व्यवस्थित चिंतन भी इनहोने किया है। 'सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता' शीर्षक पुस्तक इसी बात का प्रमाण है। इस पुस्तक के बहाने भी विजेन्द्रजी ने सौंदर्यशास्त्र की अवधारणा का भारतीय चित्त और कविता के इसपर प्रभाव का बहुत सफलतापूर्वक रेखांकन किया है। इसमें सौंदर्य के दार्शनिक आधार से लेकर तुलसीदास को जातीय क्लैसिक की पहचान करनेवाले कवि के रूप में चिन्हित किया गया है।

विजेन्द्र की कविताओं की बिम्ब सृष्टि में एक साथ सभी ज्ञानेन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं कविताओं की बंदोबस्त। प्रतीकों का उपयोग भी कवि ने एक सुशिक्षित कवि के रूप में किया है। कविताओं में दृश्यात्मकता इतनी कि कविता और चित्रकारी एक दूसरे के पूरक हों। 'स्यानी चिड़िया', 'कठफोडवा', 'भीगे डैनों वाला गरुण', 'अगर मेरे पंख होते' आदि कविताएँ कवि के पक्षी प्रेम को एक तरफ दर्शाती हैं तो निर्द्वंद्व और निर्भीक स्वर के प्रति कवि की प्रतिबद्धता को इंगित करती हैं। यहीं से जीवन और जगत के प्रति एकनिष्ठ जीवटता आती है। जहाँ छल, छद्म, पाखंड के लिए कोई जगह नहीं है। निर्भ्रांत भावों से मुक्तिकामी स्वर्णों की पहचान करने में विजेन्द्र सक्षम रहे हैं, तदनु रूप बिम्ब भी गढ़ लेते हैं, भाषा भी निर्मित कर लेते हैं। जहाँ जीवन और कविता एक-दूसरे में संगुफित हो जाती है।

"अब ये मुझे लगा
पंख देह की शोभा नहीं
मेरा जीवन है"

पंछी के बहाने कवि जीवन-सौंदर्य रचने का दावा लेकर मुक्ति की कामना करते हैं। वैसी कामना जिसकी गूँज पारंपरिक रूप से हिन्दी कविता में सुनाई देती रही है- 'लेकिन पंख दिये हैं तो आकुल उड़ान में विघ्न ना डालो.....' 'कठफोडवा' कविता की आखिरी पंक्ति देखिये-

मुझे लगा तू आज़ाद होकर भी
कैद है
इतने खुले वन में
कहीं-न-कहीं-कैद! कैद!

रेत के बड़े-बड़े निर्जन टीले पर उगने वाले फूल 'मरगोजा' पर भी कवि विजेन्द्र ने कविता लिखी है। जिसका खिलना वसंत के आगमन की सूचना है। हर अनछूई वस्तुओं पर लिखी इनकी कविता हमें उस लोक में ले जाती है जहाँ से वस्तुएँ जीवन की अनिवार्यता का एहसास कराती हैं।

निष्कर्ष

विजेन्द्र जी ने न सिर्फ लोकधर्म चेतना से ओत-प्रोत कविताएँ लिखी हैं बल्कि लोकधर्म की समकालीनता की दुर्लभ व्याख्या भी इनहोने की है। जिसके बहाने कवि लोक-संवेदना का शास्त्र पाठक के सामने रखने में सक्षम हुआ है। इसीलिए ये कविता की रचना-प्रक्रिया के शास्त्र को

रचने वाले विरल समकालीन रचनाकार हैं। इसीलिए समकालीन कविता पर होने वाली हर बहस में विजेन्द्र का नाम आना अस्वाभाविक नहीं है। कारण है विजेन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा और विस्तीर्ण काव्य-संवेदना के साथ-साथ विरल लोक-शिल्प। विजेन्द्र की कवितायें रेगिस्तान के बंजारों के उस लोकगीत की तरह है जिसे जीवन गा रहा है। इनकी चित्रकारी उस आमूर्त अभिव्यक्ति में निर्मित कला का प्रमाण है, जिसमें मानव जीवन अपने हर स्वरूप में मौजूद है। इसीलिए इस अद्भुत शिल्पकार के पास भावों का ऐसा ऐंद्रिक स्पर्श है जिसके कोर-कोर में जीवन भी है और उसकी गतिशीलता भी। [4]

संदर्भ

- [1] विजेन्द्र की कविताओं की बिम्ब सृष्टि, 2016
- [2] विजेन्द्र की कविताओं की दुनिया, 2015
- [3] विजेन्द्र के अनुभवों की दुनिया, 2011
- [4] चित्रकारी में कविता तलाश, 2010

